International Journal of Sanskrit Research 2022; 8(3): 131-136

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2022; 8(3): 131-136
© 2022 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 23-01-2022
Accepted: 09-03-2022

विश्वाची
संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली, भारत

Corresponding Author:
विश्वाची
संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली, भारत

आधुनिक संस्कृत महाकाव्य दयानन्ददिग्वजयम् में राष्ट्र का स्वरूप एवं राष्ट्रियभावना

विश्वाची

शोधसार

दयानन्ददिग्विजयम् पं. मेधाव्रत शास्त्री द्वारा विरचित एक महाकाव्य है, जिसमें दयानन्द के सम्पूर्ण जीवन-चरित्र का वर्णन किया गया है। राष्ट्रिय भावना का शाब्दिक अर्थ है- राष्ट्र की एकता की कामना अर्थात् राष्ट्रप्रेम जो किसी भी धर्म-भेद, रंग-भेद, समाज-भेद अथवा अमीरी-गरीबी से प्रभावित न हो। आवश्यकता पड़ने पर 'वयं राष्ट्रे जागृयाम पुरोहिताः' इस धेय-मन्त्र के साथ समाज के सजग प्रहरी के रूप में आगे आना वास्तव में राष्ट्रियता की सर्वमान्य परिभाषा हो सकती है। दयानन्ददिग्विजयम् के द्वितीय सर्ग के प्रारम्भ में भारत माता का वैभव, उसकी भौगोलिक स्थिति तथा सांस्कृतिक महत्त्व को दर्शाया गया है।

दयानन्द ने संस्कृत वाङ्गमय का अध्ययन किया था। उन्होंने ऋग्वेद के पृथ्वीसूक्त तथा अथर्ववेद के राष्ट्राभिवर्धनसूक्त का अध्ययन किया था। अतः उनके मन में 'माता भूमि पुत्रोऽहं पृथिव्याः' यह विचार सदैव रहता था। दयानन्द की गुरुदक्षिणा का प्रसङ्ग राष्ट्रिय भावना से ओत-प्रोत है। गुरु विरजानन्द द्वारा राष्ट्रोद्धार हेतु जीवन समर्पित करने पर उन्होंन कहा- समर्पितं श्रीचरणे स्वजीवनं नियोज्यमेनं विनियोजयेह यथा। राष्ट्रधर्म सर्वोपरि धर्म है, जिसको दयानन्द ने सहर्ष स्वीकार किया। जिसकी प्रशंसा स्वयं गुरु विरजानन्द ने इस प्रकार की- अद्य श्रमै मैं फलितं नितान्तम्। सत्पात्रदत्ता फलतीह विद्या। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने राष्ट्रप्रेम व राष्ट्रनिर्माण हेतु अपने जीवन के चरम लक्ष्य मोक्षानन्द को त्याग कर राष्ट्रिय भावना की एक नई मिसाल कायम की। यथा-

श्रेयसे मानवानां यो मोक्षानन्दं जहौ मुदा।
दयानन्द इवोदार्ये दयानन्दः स आबभौ।।

राष्ट्रशब्द की व्युत्पत्ति-

'राष्ट्र' शब्द की निष्पत्ति दीप्त्यर्थक 'राज्' धातु से हुई है जिसमें औणादिक 'ष्ट्रन्' प्रत्यय जोड़ा गया है।[1]

कोशकारों की दृष्टि में राष्ट्र-

श्री तारानाथ तर्कवाचस्पति भट्टाचार्य द्वारा संकलित संस्कृत के प्रसिद्ध अभिधानग्रन्थ वाचस्पत्यम् में राष्ट्र शब्द का अर्थ जनपद किया गया है। राजा राधाकान्त देव द्वारा संस्कृत के ही एक अन्य प्रसिद्ध अभिधान ग्रन्थ 'शब्दकल्पद्रुम्' में राष्ट्र शब्द का 'विषय' किया गया है।[2] शिवराम आप्टे ने संस्कृत इंग्लिश डिक्शनरी में राष्ट्र शब्द का अर्थ नेशन, किंगडम, कन्टरी आदि बताया है। हिन्दी साहित्य जगत् में विख्यात बृहत् हिन्दी कोश में राष्ट्र शब्द का अर्थ देश, राज्य और जाति किया गया है।[3] मानक हिन्दी कोश में राज्य या देश से तात्पर्य किसी निश्चित और विशिष्ट क्षेत्र में रहने वाले लोग जिनकी एक भाषा, एक से रीति-रिवाज तथा एक सी विचारधारा होती है एवं किसी एक शासन में रहने वाले सब लोगों के समूह से होता है।[4]

राजनीतिशास्त्रियों की दृष्टि में राष्ट्र-

इंग्लिशभाषी राजनीतिशास्त्रियों ने राष्ट्र शब्द के लिए सर्वसम्मति से नेशन (Nation) शब्द का प्रयोग किया है। भाषावैज्ञानिकों की धारणा है कि यह शब्द मूलतः लेटिन भाषा के नेटस (Natus) शब्द से विकसित हुआ है, जिसका अर्थ ऐसी जाति अथवा जन्म से होता है, जिनमें प्रजाति सम्बन्धी समानता पाई जाती है। इसलिए राजनीतिशास्त्र में राष्ट्र शब्द के एकमात्र पर्यायवाची नेशन शब्द का अर्थ एक ऐसा मानवपुञ्ज समझा जाता है जो जन्म, जाति एवं प्रजाति की दृष्टि से परस्पर एकता की सुदृढ़ भावना रखता हो।

अपने राष्ट्र की भूमि, जनसमूह, संस्कृति, सभ्यता, इतिहास, धर्म, साहित्य, कला, राजनीति, जीवनदर्शन आदि के प्रति लोगों के मन में गरिमा एवं महिमा का जो एक नैसर्गिक स्वाभिमान हुआ करता है उसे ही हम राष्ट्रियभावना की संज्ञा देते हैं। राष्ट्रिय भावना अर्थात् अपने देश, अपनी जन्मभूमि के प्रति प्रेम की भावना आदर की भावना ही राष्ट्रिय भावना है। प्रत्येक व्यक्ति के अन्तःकरण में राष्ट्रियता की भावना होनी चाहिए। जिस राष्ट्र में व्यक्ति जन्म लेता है, अपने अधिकारों को प्राप्त करता है, स्वयं का भरण-पोषण करते हुए सभी समृद्धियों को प्राप्त करता है, यश अर्जित करता है उस राष्ट्र के प्रति उत्पन्न भावना ही राष्ट्रिय भावना है।

भूमिका-

किसी भी देश अथवा राष्ट्र की उन्नति उसके नागरिकों के जीवन पर निर्भर करती है। समाज अथवा राष्ट्र मानव जीवन का अभिन्न अङ्ग है, मानव जिससे जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त प्रभावित होता है। उसके आचार-विचार, उसकी शिक्षा, संस्कार, उसका चरित्र ही राष्ट्र के चरित्र का निर्माण करता है। साहित्य भी उसी समाज अथवा राष्ट्र का प्रतिबिम्ब होता है। संस्कृत साहित्य सदा से ही मानव जीवन का प्रेरणा-स्त्रोत रहा है। संस्कृत साहित्य के प्राचीन ऋषियों तथा कवियों की वाणी द्वारा मानव जीवन में राष्ट्र प्रेम की भावना का निरन्तर प्रवाह बना रहा है। संस्कृत साहित्य के महान् कवियों द्वारा अपनी रचनाओं में एक आदर्श राष्ट्र तथा उसके प्रति प्रेम व कर्तव्यों का चित्र प्रस्तुत किया जाता रहा है। यहाँ 'दयानन्ददिग्वजयम् महाकाव्य' में वर्णित राष्ट्र का स्वरूप एवं राष्ट्रियभावना को निम्न शोधपत्र के माध्यम से दर्शाए जाने का प्रयास किया गया है-

भारत की भौगोलिक स्थिति-

हिमाद्रिविन्ध्याचललालिताभिर्नदीभिरामण्डितभूमिखण्डा।
स्वपूर्वजानन्तयशःशशाङ्कैः शुक्लीकृता भारतभूश्चकास्ति।।[5]

संसार के ऊँचे शैलेन्द्र हिमालय और विन्ध्याचल जैसे पर्वतराजों से और गङ्गा, यमुना, सरस्वती, गोदावरी आदि नदियों से भारत-माता के सारे प्रदेश सुशोभित हैं। यह अपने वीर, विद्वान्, सदाचारी, ऋषि मुनि तथा विजेताओं की यशश्चन्द्रिका से प्रकाशित हो रही है।

भारत की सामुद्रिक स्थिति-

महार्हरत्नोदयशैलराजौ महाम्बुधी तुङ्गतरङ्गहस्तैः।
आनीय मालां मणिमौक्तिकानां यस्या ददाते चरणारविन्दे।।[6]

अनेक मूल्यवान् रत्नों को उत्पन्न करने वाले हिन्दमहासागर तथा अरबसमुद्र विशाल तरङ्गरूपी हाथों से मोतियों की माला लाकर भारत माता के चरणारविन्द पर अर्पण किया करते हैं।

भारत का प्राकृतिक परिदृश्य

फलद्रुमालङ्कृतसस्यदेशा
नानाविहंगारवगुञ्जिताशाय।
सर्वर्त्तुशर्मप्रदवायुतोया सर्वांशतो या सुरलोकसेव्या।।[7]

यह भारतमाता फलफूल के वृक्षों से और अनाज के लहलहाते खेतों से सर्वदा हरी- भरी रहती है। यहाँ भिन्न-भिन्न प्रकार के पक्षी भी हैं, जिनके मधुर कलरव से दिशाएँ शब्दायमान रहती हैं। इसका जलवायु प्रत्येक ऋतु में सुखदायक है। फलतः यह देवताओं के योग्य है।

षण्णामृतूनां रमणीयरूपैरुपस्थिता भारतरङ्गमञ्चे।
स्फुरद्विलासा प्रकृतिर्नटीयम् यस्या मनो नन्दयति प्रकामम्।[8]

भारत के रङ्गमञ्च पर प्रकृति नटी समय समय पर छः ऋतुओं के सुन्दर रूपों को धारण कर उपस्थित होती है और भारतमाता को अपने सुन्दर विलासों से खूब प्रसन्न करती रहती है।

भारतमाता की वीर-भोग्या वसुन्धरा के रूप में प्रतिष्ठा

'माता भूमिः पुत्रो...sहं पृथिव्याः' सभी भारतवासियों की पहचान है। इस भारतभूमि ने अनेक ऐसे वीर पुत्रों को उत्पन्न किया है जो इसकी आन-बान-शान के लिए अपने प्राणों की भी परवाह न करते हुए देशहित में सदैव कृतप्रतिज्ञ रहते हैं। वीर शिवाजी तथा महाराण प्रताप जैसे वीर पुत्रों ने इस का उपभोग किया है।

वीरैकभोग्या शुभयज्ञयोग्या पुण्यात्मनां कल्पतरूमेया।
निश्रेयसस्वभ्युदयोपलब्धौ सहायिका या सहधर्मिणीव।।[9]

इसका उपभोग वीर ही कर सकते हैं, यज्ञ के लिए यह प्रशस्त भूमि है, पवित्र आत्मा के लिए यह कल्पवृक्ष सी है। सांसारिक सुख और मोक्ष प्राप्ति में यह अर्धाङ्गिनी की तरह सहायता देती है।

हिमालयो रम्यमहीरुहाणां शाखाकराग्रैर्दलसम्पुटेषु।
आदाय देव्यै सुफलोपहारान् यस्यै सदा सेवकवत् प्रदत्ते।।[10]

इस भारतमाता के लिए पर्वतराज हिमालय सुन्दर वृक्षों की शाखारूपी हाथों से पत्तों के दोनों में हमेशा मीठे फलों की भेंट लेकर सेवकतुल्य उपस्थित रहता है।

भारत का चिरकालीन राष्ट्रिय गौरव-

यशोबलाभ्यां सितचामराभ्यां साम्राज्यलक्ष्मीस्सह शान्तिदेव्या।
धर्मातपत्रां नयदण्डहस्तां यां पुण्यभूमिं सुचिरं सिषेवे।।[11]

साम्राज्य-लक्ष्मी शान्तिदेवी के साथ यश और बलरूपी श्वेतचामरों को लेकर धर्म-छत्र और नीति-दण्ड को धारण करने वाली इस भारतमाता की हजारों वर्षों तक सेवी करती रही है।

भारत की राष्ट्रिय सम्पन्नता-

हमारा राष्ट्र धन-धान्य तथा वैभव से परिपूर्ण रहा है। भारत ने सदैव अन्य देशों के साथ आर्थिकसहायता, वैचारिक-सहयोग, मैत्रीपूर्ण व्यवहार तथा अवसरोचित सहायता प्रदान कर अपनी राष्ट्रिय सम्पन्नता का परिचय दिया है।

अयोनिभा अन्यदरिद्रदेशायां रत्नधां स्पर्शमणिस्वरूपाम्।
संस्पृश्य जातास्तपनीयतुल्या सुवर्णचित्रां रुचिरार्थशोभाम्।।[12]

यह भारतमाता सोना, चाँदी, हीरा, पन्ना, नीलम आदि अनेक धातुरत्नों से सुशोभित है। सचमुच यह पारसमणि ही है, जिसके संसर्ग से दुनिया के अन्य लोह-तुल्य दरिद्र देश स्वर्णमय बन गये।

स्त्री-शिक्षा के प्रति राष्ट्रिय भावना-

दयानन्द स्त्री-शिक्षा के पक्षधर थे। वैदिक काल में स्त्रियों का स्थान बहुत सम्मानजनक था व उन्हें भी शिक्षा का पूर्ण अधिकार था। यज्ञादि कोई भी महत्त्वपूर्ण कार्य स्त्री की उपस्थिति के बिना अपूर्ण माने जाते थे। परन्तु दयानन्द के समय में यह पृथा अपने अधोपतन को प्राप्त हो चुकी थी जिसे दयानन्द ने पुनर्जीवित कर नागरिकों के अन्तःकरण में स्त्री-शिक्षा के प्रति राष्ट्रियभावना को जागृत किया।

विद्यातपोविनयशीलगुणाभिरामा रामाः पवित्रहृदया गृहराजलक्ष्म्यः।
तादृग्गुणाश्च गृहमेधिनरा यदासन् कान्ता तदा समभवत् सुतरत्नमाला।। [13]

विद्या, तप, विनय, शील एवं सद्गुणों से शोभित, पवित्र हृदयवाली गृहराज्य की लक्ष्मी तुल्य महिलाएं और इन्हीं गुणों से अलङ्कृत गृहस्थ सज्जन पुरूषों के संयोग से उत्तम सन्तति होती है।

नारी शक्ति में निहित राष्ट्रियभावना

गृहश्रियः श्रीपतिदेवभक्तयः सदा प्रजामङ्गलमूर्तयः स्त्रियः।
स्वराष्ट्रधर्मोदयसिद्धिमातरो दयार्द्रचित्ता गृहनीतिचन्द्रिका।। [14]

स्त्रियाँ गृह की लक्ष्मी थी, अपने पतियों पर देवतुल्य भक्ति रखती थीं, प्रजा के लिए साक्षात् मङ्गलकारिणी देवी थीं। अपने राष्ट्र और धर्म के अभ्युदय के लिए प्रत्यक्ष मूर्तिमती सिद्धि थीं। उनका हृदय कोमल था। वे चन्द्रमा के समान गृहनीति की प्रकाशिका थीं।

कृपादरिद्रोग्रकृपाणपाणयः
प्रचण्डकोदण्डविमुक्तमार्गणाः।
अरातिदन्तीन्द्रमृगाधिपाङ्गना रणे विरेजु रणचण्डपण्डिताः।।[15]

भारत की क्षत्राणियाँ रणाङ्गण में रणचण्डिका के रूप में चमका करती थीं। उनके हाथों मे सर्पिणीतुल्य लपलपाती तलवारें रहती थीं, और कंधों पर धनुष और बाण लटका करते थे, जिन्हें वे अवसरों पर छोड़ा करती थीं और शत्रुरूप गजराजों पर सिंहनी के समान टूट पड़ती थी।

स्वराज्यसंचालनकर्मशिक्षिता नरेन्द्रकन्या रणयज्ञदीक्षिताः।
अनेकविद्यासुकलाभिमण्डिता अमण्डयन्नार्यमहीं महीयसीम्।। [16]

यहाँ की राजकन्याएं चतुरतापूर्वक अपना राज्य संचालन तक सकती थीं। समय पड़ने पर बड़े-2

रणयज्ञ रचा करती थीं। वे अनेक विद्या और कलाओं तो जानती थीं। जिससे भारत माता का मुखचन्द्र चमकता था।

परोपकारप्रवण प्रजेश्वराः प्रजाहितार्थं वसुसौख्यसुन्दरान्।
मनोज्ञभोगान् रमणीविलासनान् स्वजीवनञ्चापि तृणाय मेनिरे।। [17]

अपने देश मे प्रजापालक नृपतिगण बड़े ही परोपकारी हुआ करते थे। वे प्रजाहित के लिए ऐश्वर्य सुख, सुन्दर भोगविलास तथा स्त्रीसुख को भी त्याग देते थे और अधिक क्या कहें वे अपने जीवन को भी होम कर देते थे।

राष्ट्रोद्धार के लिए स्वसमर्पण की भावना-

जब दयानन्द ने गुरुदक्षिणा में स्वामी विरजानन्द को लौंग भेंट की तब गुरु विरजानन्द द्वारा राष्ट्रोद्धार के लिए जीवनाहुति माँगने पर आपने उसे सहर्ष स्वीकार कर लिया। 'समर्पितं श्रीचरणे स्वजीवनं नियोज्यमेन विनियोजयेद् यथा'

श्रेयसे मानवानां यो मोक्षानन्दं जहौ मुदा।
दयानन्द इवौदार्ये दयानन्दः स आबभौ।। [18]

अर्थात् जिस दयानन्द ने मानवमात्र के कल्याण के लिए प्रसन्नतापूर्वक मोक्ष के आनन्द को त्याग दिया, निश्चित रूप से उदारता में दयानन्द की तुलना दयानन्द से ही की जा सकती है।

उपसंहार

भारतीय-शास्त्रों में मानव का एकमात्र सर्वोपरि लक्ष्य मोक्षप्राप्ति को बताया गया है। गुरुवर विरजानन्द द्वारा गुरुदक्षिणा के फलस्वरूप जगतोद्धार के लिए जीवनाहुति माँगने पर दयानन्द ने स्वमोक्षप्राप्ति के लक्ष्य को सहर्ष त्याग दिया था। अतः मानवमात्र के प्रति दया, उदारता, कल्याण की भावना आदि गुण होने के कारण दयानन्द की तुलना दयानन्द से ही सम्भव है। 'दयानन्ददिग्विजयम् महाकाव्य' में वर्णित राष्ट्र का स्वरूप एवं राष्ट्रियभावना को इस शोध-पत्र के माध्यम से भलीभांति समझा जा सकता है।

संदर्भ सूची

1. सर्वधातुभ्यः ष्ट्रन् सिद्धान्तकौमुदी, उणादि प्रकरण 4/158
2. शब्दकल्पद्रुम, चतुर्थ काण्ड, पृ. 158
3. बृहत् हिन्दी-कोश पृ. 1152
4. मानक हिन्दी कोश पृ. 505
5. द.दि. 2/1
6. द.दि. 2/2
7. द.दि. 2/3
8. द.दि. 2/7
9. द.दि. 2/4
10. द.दि. 2/6
11. द.दि. 2/8
12. द.दि. 2/9
13. द.दि. 15/15
14. द.दि. 1/20
15. द.दि. 1/21
16. द.दि. 1/22
17. द.दि. 1/30
18. द.दि. 13/10

सन्दर्भ-ग्रन्थ सूची

1. दयानन्ददिग्विजयम् (पूर्वार्ध) - मेधाव्रताचार्य, अनु.- श्रुतबन्धु शास्त्री, कन्या गुरुकुल महाविद्यालय नरेला दिल्ली 1995
2. दयानन्ददिग्विजयम् (उत्तरार्ध) - मेधाव्रताचार्य, अनु.- सत्यव्रत शास्त्री, हरियाणा साहित्य संस्थान, 2010
3. अमरकोश - अमरसिंह, संस्कर्ता – पं. शिवदत्त दाभिध, संशोधक - वाशुदेव लक्ष्मण शास्त्री पणशीकर, राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली, 2003

4. भारतीय साहित्यशास्त्र कोश - राजवंश सहाय 'हीरा, बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पटना, 2003
5. वाचस्पत्यम् - चौखम्बा संस्कृत सीरिज ऑफिस, वाराणसी, 1962
6. शब्दकल्पद्रुमः - चौखम्बा संस्कृत सीरिज ऑफिस, वाराणसी, 1967